खारे पानी में खेती

ए. डी. कर्वे एवं एन. जे. झेंडे

आसपास की घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन करना और इन अवलोकनों का सैद्धान्तिक जानकारी के साथ तालमेल बिठाना, व्यावहारिक विज्ञान के ये दो मुख्य घटक हैं। इस प्रक्रिया से ही नए आविष्कार जन्म लेते हैं और नए तंत्र विकसित होते हैं।

समुद्र यानी पानी का अथाह भण्डार, परन्तु सभी जानते हैं कि पेड़-पौधों व फसलों की सिंचाई के लिए यह पानी सर्वथा अनुपयुक्त होता है। जिस पौधे को समुद्र के पानी से सींचा जाए, वह पौधा कुछ ही समय में मुरझा जाता है। आखिर, ऐसा क्यों होता है?

आपने शक्कर को पानी में घुलते हुए देखा है। मिश्रण को हिलाने से

घुलने की क्रिया तेज़ होती है। लेकिन मिश्रण को स्थिर रखने पर भी कुछ समय पश्चात शक्कर और पानी का समांगी घोल (Homogeneous solution) प्राप्त होता है। यहां शक्कर एक विलेय पदार्थ (Solute) है और पानी विलायक (Solvent) है। घुलने की प्रक्रिया विसरण के सिद्धांत (Diffusion) पर निर्भर है। इस सिद्धांत के अनुसार विलयन में, विलेय के अणु अधिक सान्द्रता वाले स्थान से कम सान्द्रता वाले स्थान की ओर गति करते हैं। इसी प्रकार विलायक के अणु भी अधिक सान्द्रता से कम सान्द्रता की ओर बढ़ते हैं। कालान्तर में विलेय और विलायक के अणु एक समांगी मिश्रण बना लेते हैं, जिसे विलयन कहते हैं।

वनस्पति और प्राणियों की जीवित कोशिकाओं में जल के अतिरिक्त कई प्रकार के विलेय पदार्थ जैसे शर्करा, प्रोटीन, कार्बनिक अम्ल आदि उपस्थित रहते हैं। जीवित कोशिका को पानी में डालने पर वह फूलती जाती है और एक निश्चित आकार ग्रहण करती है। खीर में डाले गए किशमिश के दानों को आपने देखा होगा। किशमिश स्वाद

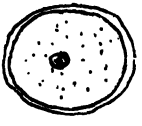

जल में

जीवित कोशिका

नमक के घोल में

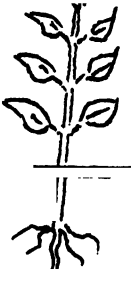

जल से सींचने पर

नमक के घोल से सींचने पर

में मीठी होती है क्योंकि इसमें शर्करा के अणु उपस्थित रहते हैं। दो-चार किशमिश के दानों को कुछ समय के लिए पानी में डाल दीजिए, दाने फूल जाते हैं। इससे मालूम पड़ता है कि बाहरी माध्यम से पानी के अणु किशमिश के अन्दर प्रवेश कर गए हैं। परन्तु क्या इसी तरह किशमिश के अंदर की मिठास भी बाहर के पानी में आ गई है। इसे जांचने के लिए यदि आप पानी को चखेंगे तो मीठा नहीं लगेगा। इससे पता चलता है कि किशमिश के अन्दर से शर्करा के अणु बाहर नहीं आ पा रहे हैं। इसका क्या कारण है?

यों होता है ऐसा

इसका कारण जीवित कोशिका की ऊपरी झिल्ली का अर्धपारगम्य (Semi-permeable) होना है। अर्धपारगम्य झिल्ली में से पानी के अणु तो आर-पार जा सकते हैं किन्तु विलेय के अणु बाहर नहीं आ सकते। जब दो विलयन अर्धपारगम्य झिल्ली से विभाजित रहते हैं, यानी जब दोनों के बीच अर्ध-पारगम्य झिल्ली हो, तो पानी के अणु कम से अधिक सान्द्रता वाले विलयन में प्रवेश करते हैं। यहां पानी के अणुओं का विसरण (Diffusion) अर्धपारगम्य झिल्ली में से होता है। इस क्रिया को परासरण अथवा रसाकर्षण (Osmo-sis) कहते हैं। कोशिका द्रव्य में विलेय पदार्थों की सांद्रता अधिक होने के कारण इसका परासरण प्रभाव अधिक होता है। इसी कारण यह बाहरी माध्यम से पानी के अणुओं को अन्दर खींचता है। इसी प्रक्रिया के द्वारा पेड़-पौधों की जड़ें ज़मीन से पानी खींचती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या रसाकर्षण उल्टी दिशा में भी हो सकता है? हां, यदि बाहरी घोल की सांद्रता अधिक हो तब यह घटना संभव है। नमक के घोल से अथवा समुद्र के खारे पानी से सींचने पर पौधे का मुरझा जाना भी इसी घटना का उदाहरण है। इस घटना को रस-ह्रास (Plasmolysis) कहते हैं।

'कच्छ वनश्री' अथवा 'मेन्ग्रोव' के बारे में आपने सुना होगा। समुद्र के किनारे ज्वार-भाटे वाले क्षेत्र की दलदली भूमि में कई तरह की वनस्पति फलती-फूलती है। समुद्र तटीय वनस्पति के इस जंगल को मेन्ग्रोव कहते हैं। मेन्ग्रोव में पनपने वाले पेड़-पौधे वर्ष भर हरे-भरे रहते हैं।

समुद्र के खारे जल में जबकि अन्य वनस्पति मुरझा जाती है, मेन्ग्रोव वनस्पति स्वयं को इस नमकीन दलदल में हरा-भरा कैसे रख पाती है? इस रहस्य को जानने के लिए हमने कुछ प्रयोग किए। समुद्र किनारे से कुछ दूरी पर हमने एक फुट ऊंचाई की मिट्टी की क्यारियां बनाई और उनमें मेन्ग्रोव

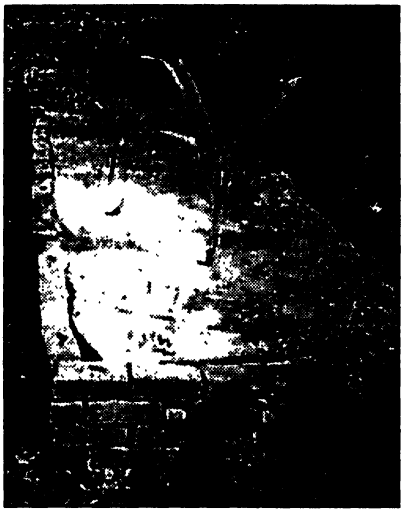

खारे पानी से प्रयोग: ऐसे पौधे चुने जिनमें समुद्री जल की लवणीयता को सहन करने की क्षमता हो। ईंटों की दीवार के बीच रेत भरकर क्यारियां बनाई गईं। उनमें ये पौधे लगाए। फिर उन्हें रोज़ इतना समुद्री पानी देते थे कि पानी रेतीली परत में से बह कर बाहर निकल जाए। दिन भर में वाष्पन की वजह से जो थोड़े से लवण रेत में इकट्ठे हो जाते थे, वे अगले दिन समुद्री पानी से सींचने पर बाहर निकल जाते थे। इससे रेत में लवणों की सांद्रता बढ़ नहीं पाती थी और पौधे भी जीवित बने रहते थे।

में पाई जाने वाली प्रजातियों के कुछ पौधे लगाए। पौधों को सींचने के लिए उसी समुद्री जल का प्रयोग किया जिसमें मेन्ग्रोव पनपते हैं। हमने देखा कि कुछ समय पश्चात पौधे मुरझा गए। प्रयोग के परिणाम से यह प्रश्न उठता है कि मिट्टी की क्यारी में जो वनस्पति समुद्र के खारे पानी को सह नहीं सकती, वह समुद्र किनारे के नमकीन दलदल में स्वयं को तरोताज़ा और हरा-भरा कैसे रख पाती है? कुछ सोच-विचार के बाद इस प्रश्न का हल हमने ढूंढ निकाला।

ज्वार-भाटे का असर

समुद्र के किनारे मेन्ग्रोव वाला हिस्सा ज्वार-भाटे के क्षेत्र में आता है। ज्वार-भाटा के कारण यह भूभाग दिन में दो बार समुद्री जल से धुलता है। इस कारण मेन्ग्रोव के आसपास निरंतर ताज़ा समुद्री जल बना रहता है और लवण की सांद्रता स्थिर रहती है। समुद्री जल में सामान्यतः लवणों की सांद्रता 3.5 प्रतिशत तक होती है। 3.5 प्रतिशत तक सान्द्रता वाले जल में मेन्ग्रोव वनस्पति जीवित रह सकती है। लवण की इससे अधिक मात्रा, वनस्पति के लिए घातक होती है। मिट्टी की क्यारियों में चूंकि समुद्री जल को पूरी तरह निकाल बाहर कर ताज़ा पानी देने की व्यवस्था नहीं होती, अतः समय के साथ क्यारी के पानी में लवण की सांद्रता बढ़ने पर विपरीत दिशा में परासरण (Exo-osmosis)

बीज और फूलः मेन्ग्रोव की एक टहनी जिसमें बीज लगा दिखाई दे रहा है। टहनी के पास मेन्ग्रोव का फूल भी दिखाया गया है। मेन्ग्रोव के बीजों की एक खास बात यह होती है कि शाखा पर लगे-लगे ही ये अंकुरित हो जाते हैं।

बीज से पौधे का बननाः 'अ' मेन्ग्रोव में फल टहनी पर तब तक बने रहते हैं जब तक बीजों का अंकुरण न हो जाए।
'ब' एक बार बीज ठीक से अंकुरित हो जाएं तो वे दलदल में गिर जाते हैं।
'स' दलदल में गिरे बीज जड़ें पकडने लगते हैं व पौधा बनने की संभावना बढ़ जाती है।

समुद्री तट के दलदली क्षेत्र में मेन्ग्रोव के वृक्ष: हिन्दुस्तान में सुन्दरवन मेन्ग्रोव का सबसे बड़ा जंगल है। यहां 65 प्रजाति के पेड़ पाए जाते हैं जो सालभर हरे-भरे रहते हैं। मेन्ग्रोव में विशेष तरह की जड़ प्रणाली पाई जाती है और कुछ प्रजातियों में समुद्री पानी की लवणीयता से निपटने के लिए विशेष मेकेनिज़्म होते हैं। जैसे सफेद मेन्ग्रोव की पत्तियों में मौजूद ग्रंथियां व राइज़ोफोरा की जड़ें, इन पेड़ों में लवणीयता को घातक सीमा के अंदर बनाए रखती हैं।

के कारण पौधे मर जाते हैं, यानी कि रसह्रास के कारण वे खत्म हो जाते हैं।

अंततः मेन्ग्रोव से सबक लेकर हमने एक ऐसा तंत्र विकसित किया जिसके ज़रिए समुद्र के खारे पानी का उपयोग सिंचाई के लिए किया जा सके। अपने अनुभव और अनुसंधानों से हमने पाया कि कुछ सीमित क्षेत्रों में ही इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है। सिंचाई के लिए इस विधि का उपयोग करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है:

1. प्लांटेशन स्थल समुद्र से अथवा खारे जल के कुएं से अधिक दूरी पर न हो।
2. समुद्री जल अथवा कुएं का खारा जल कम लागत में प्लांटेशन स्थल तक पहुंचाया जा सके।
3. प्लांटेशन के लिए ऐसी वनस्पति का चुनाव किया जाए जो आर्थिक

दृष्टि से लाभकारी हो और जिसमें समुद्री जल का खारापन सहने की क्षमता हो।

4. प्लांटेशन के लिए बनाई गई क्यारियों में रेत का ही प्रयोग किया जाए।

5. सिंचाई की योजना इस प्रकार बनाई जाए ताकि क्यारियों से जल का निकास सुगमतापूर्वक हो सके और क्यारियों में लवणों की सांद्रता वनस्पति की सहनशीलता से अधिक न होने पाए।

इस तरीके को अपनाते हुए समुद्री जल से सिंचाई के प्रत्यक्ष प्रयोग हमने दो जगह करके दिखाए। एक स्थान गोआ राज्य के दोनापौला स्थित नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ ओशिएनोग्राफी और दूसरा महाराष्ट्र के देवगढ़ ज़िले का ग्राम सौंदा था। प्रयोग के लिए हमने समुद्र किनारे के नज़दीक 30 से. मी. ऊंचाई की रेत की क्यारियां बनाईं। रेत-कणों का व्यास 1 से 4 मि.मी. था। इन क्यारियों में लवण सहन करने वाली कुछ वनस्पतियां लगाई गई। क्यारियों से जल का निकास सुनिश्चित करते हुए प्रतिदिन पर्याप्त समुद्री जल से सिंचाई की गई। दिन में जल के वाष्पीकरण से क्यारियों में नमक की मात्रा बढ़ जाती थी, लेकिन दूसरे दिन दिए जाने वाले ताज़ा समुद्री जल से इसका आधिक्य धुल जाता था। इस प्रकार लवणों की मात्रा को नियंत्रित किया गया। प्रयोग के दौरान क्यारियों में लगाई गई सभी वनस्पतियां जीवित रहीं और इनकी वृद्धि दर भी सामान्य रही।

तीन वर्ष के अनुसंधान से हमने पाया कि उपरोक्त विधि से सिंचाई के द्वारा व्यापारिक महत्व की निम्न वनस्पतियों की पैदावार की जा सकती है।

1. नारियलः खोपरा, तेल, रस्सी, उत्तेजक पेय, आदि का स्रोत।
2. खेजड़ीः ईंधन की लकड़ी, फलियों से पशुखाद्य।
3. पारस पीपलः अच्छे किस्म की लकड़ी।
4. झाऊः भारी लकड़ी।
5. पीलूः कच्चे फलों का अचार, बीजों के तेल से लॉरिक अम्ल।
6. नीलगिरी, ग्वारफाटा, धायपात, ताड़, नीम आदि।

इस प्रयोग में यह भी पाया गया कि उपरोक्त विधि से फलदार वृक्षों की पैदावार नहीं की जा सकती है। फलदार वृक्षों की जड़ें खारे पानी को सहन नहीं कर पाती हैं।

समुद्री जल से खेती उसी क्षेत्र में लाभदायी हो सकती है जहां वर्षा का प्रतिशत कम हो। महाराष्ट्र की कोंकण पट्टी में अच्छी बरसात होती है इस

मेन्ग्रोव की जड़ प्रणाली

मेन्ग्रोव में पाए जाने वाले पौधों का जड़तंत्र अन्य पौधों से काफी भिन्न होता है। चूंकि मेन्ग्रोव के दलदली इलाकों में ज़मीनी परिस्थितियां अत्यंत भिन्न होती हैं और उन परिस्थितियों में जड़ें अपने सामान्य काम कर पाएं, इसलिए उनमें अलग तरह के जड़तंत्र का विकास (Evolution) हुआ है। मेन्ग्रोव में पाई जाने वाली कुछ प्रजातियों में मोटी-मोटी जड़ें ज़मीन/क्षैतिज के समांतर फैली रहती हैं ताकि पौधों को चौड़ा आधार मिले। चूंकि दलदली ज़मीन में ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है इसलिए अक्सर ऐसी जड़ों में से ज़मीन से बाहर की ओर, दूसरे प्रकार की जड़ें (न्यूमेटोफोर) निकलती हैं जिनका काम हवा से गैसों का आदान-प्रदान करना है। पौधा आसानी से उखड़ नहीं जाए इसके लिए तीसरी तरह की 'लंगर जड़ें' (Anchor Roots) होती हैं, जो ज़मीन में गहराई तक जाती हैं और पौधे को स्थाइत्व प्रदान करती हैं। इनके अलावा दलदल की ऊपरी सतह से पोषण ग्रहण करने के लिए बारीक 'पोषण जड़ों' का जाल भी बिछा रहता है।

मेन्ग्रोव की एक अन्य प्रजाति में तनों के निचले हिस्से में ही मोटी-मोटी

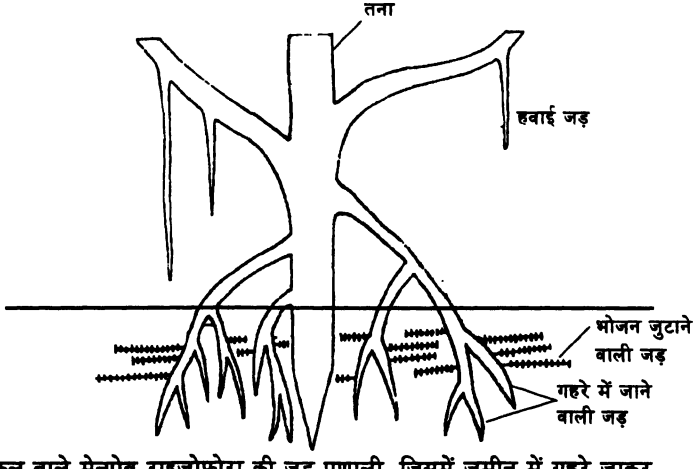

जुड़वां फूल वाले मेन्ग्रोव राइज़ोफोरा की जड़ प्रणाली, जिसमें ज़मीन में गहरे जाकर पकड़ बनाने वाली जड़ें, पेड़ के लिए भोजन जुटाने वाली जड़ें, और हवाई जड़ें साफतौर पर देखी जा सकती हैं।

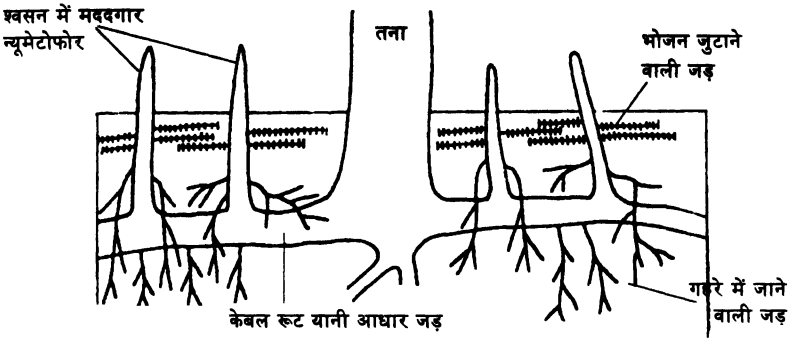

सफेद मेन्ग्रोव: सफेद मेन्ग्रोव में जड़ विन्यास थोड़ा फर्क होता है। इसमें पेड़ की जड़ें अपना क्षैतिज विस्तार करती हैं। इनके अलावा ज़मीन में गहराई में जाकर पेड़ को मज़बूती देने वाली जड़ें भी होती हैं। पेड़ के लिए खाना जुटाने वाली बारीक जड़ें बखूबी फैली होती हैं। क्षैतिज आधार जड़ों में से वे जड़ें ज़मीन के ऊपर निकली होती हैं जो पेड़ के लिए श्वसन का काम करती हैं।

जड़ें फैल कर ज़मीन में चौड़ा आधार बनाती हैं। इनके अलावा इसमें नीचे की शाखाओं से 'एरियल जड़ें' भी निकलती हैं जो हवा में लटकी हुई दिखती हैं, और जो मौका मिलने पर भी ज़मीन पर अपनी पकड़ नहीं बनातीं।

ऐसे ही जड़तंत्र मेन्ग्रोव की अन्य प्रजातियों में भी देखने को मिलते हैं, जो सामान्य तौर पर पाई जाने वाली मूसला और झकड़ा जड़ों से बहुत भिन्न हैं।

वजह इस शोधकार्य से वहां कितना लाभ मिल पाएगा कहा नहीं जा सकता लेकिन कच्छ और सौराष्ट्र इलाकों में इससे काफी फायदा हो सकता है। जिन इलाकों में खारे जल के कुंए अधिक संख्या में होते हैं, उन इलाकों में भी सिंचाई की इस विधि को आजमाया जा सकता है।

ए. डी. कर्वे एवं एन. जे. झेंडे: वनस्पति शास्त्री हैं और 'आरती' (Appropriate Rural Technology Institute) के सदस्य हैं।

यह लेख पुणे से प्रकाशित मराठी संदर्भ के अंक-2, अक्टूबर-नवंबर, 1999 से साभार अनुदित।
इस अनुसंधान के लिए भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा आर्थिक सहायता दी गई थी।

हिन्दी अनुवाद: सुधा हर्डीकर। सुधा हर्डीकर रसायन शास्त्र की प्राध्यापिका रही हैं। सेवा निवृत्ति पश्चात होशंगाबाद में निवास।